eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 02, Issue 10, October 2023

लोकतान्त्रिक भारत की शिक्षा में पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी के शैक्षिक विचारों का अध्ययन

[1]**विकास शर्मा**

[1]रिसर्च स्कालर, महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

Received: 15 September 2023 Accepted and Reviewed: 25 September 2023, Published : 01 October 2023

Abstract

शिक्षा सीखने और सिखाने की वह प्रक्रिया है जो ज्ञान, कौशल, मूल्य, नैतिकता जैसे अनेकों गुणों की उत्पत्ति का आधार प्रदान करती है। भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में आधुनिक शिक्षा का बहुत बड़ा योगदान है। सदियों से ही भारत में वैज्ञानिक संस्कृति विद्यमान थी। ब्रिटिश पूर्व भारत का अपना एक औषधि विज्ञान था। दुनिया में जब अनेकों राष्ट्र सभ्यता के पथ पर अग्रसर हो रहे थे, इससे पूर्व ही भारत में संस्कृति और सभ्यता के साथ-साथ गणित और विज्ञान भी विद्यमान थे। शिक्षा औपचारिक और अनौपचारिक दोनों ही रूपों में हो सकती है। कोई भी वह कार्य जो मानव व्यवहार व मानव में ज्ञान का पोषण करे तथा साथ ही साथ रचनात्मकता व सृजनात्मकता का विकास करे, उसे शैक्षिक माना जा सकता है। शिक्षा एक आंदोलनकारी स्वरूप में मानव के जीवन को एक लक्ष्य प्रदान करती है। शिक्षा के अधिकार को भारत सरकार द्वारा व संयुक्त राष्ट्र द्वारा मान्यता प्राप्त है। चूँकि वैश्विक पहल का उद्देश्य सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करना है जोकि सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को बढ़ावा देता है। पण्डित दीनदयाल उपाध्याय आधुनिक भारत के प्रतिष्ठित राष्ट्रवादी विचारकों में से एक हैं, जिन्होने एकात्ममानववाद के सिद्धान्त की बात की। पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी की परिकल्पना थी कि शिक्षा के माध्यम से यदि वर्तमान के छात्र और शिक्षक, प्राचीन गुरू व शिष्य परंपरा को अपनाएँगे तो निश्चित रूप से यह समाज पुनः आचार्य देवो भव्, आत्मदीपो भव् जैसी परंपराओं को आत्मसात करने हेतु नतमस्तक हो जायेगा। शिक्षा पुनः अपने खोए हुए गौरव को सुचारु रूप से प्राप्त कर भारत को पुनः जगतगुरु के पद पर आसीन करने में सहायक सिद्ध होगी।

मूल शब्द: शिक्षा, राष्ट्रवाद, एकात्ममानववाद, सतत विकास और जगतगुरू।

Introduction

"शिक्षा मानव जगत का ऐसा अलंकार है जो उसमें तथा पशु जगत में भेद की रेखा खींचती है।"

विद्या नाम नरस्य रुपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं विद्या भोगकारी यश: सुखकारी विद्या गुरुणां गुरु: ।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता विद्या राजसु पूजिता न तु धनं विद्याविहीन: पशु: ।।
(नीतिशतक, भर्तृहरि)

शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। जिस पर मानव सभ्यता और संस्कृति टिकी हुई है। शिक्षा एक ऐसा प्रकाश है जो समस्त संसार को प्रकाशित करती है तथा मानव जीवन को मार्गदर्शन प्रदान करती है। इसी कारणवश ज्ञान को मानव के तीसरे नेत्र की संज्ञा दी जाती है। शिक्षा लोकतन्त्र की जड़ों को सुदृढ़ और सशक्त बनाने का कार्य करती है। शिक्षा के माध्यम से ही मनुष्य के शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास को सुनियोजित किया जाता है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार-"हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है जिसके द्वारा चरित्र का निर्माण होता है, मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है, बुद्धि की विकास होता है और मानव अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है।"

संपूर्ण ब्रह्माण्ड के रचनाकार परमपिता परमेश्वर ने मानव के रुप में एक अनोखी कृति का सृजन किया है। जन्म के पश्चात कुछ वर्ष तक कुछ भी न जानने वाला यह मानव कुछ ही वर्षों में समस्त प्राणी जगत का शासक बन बैठता है। केवल इस धरा पर ही नहीं अपितु यह आकाश में भी अपने पैर जमा लेता है। वहीं दूसरी ओर पशु हजारों वर्षों के पश्चात भी, जैसा पूर्व में था वैसा ही आज भी है। यह सब अंतर कैसे हुआ तो इसका उत्तर है 'शिक्षा'। शिक्षा सीखने सिखाने की क्षमता है। शिक्षा के

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 02, Issue 10, October 2023

माध्यम से ही मानव अपनी सभ्यता और संस्कृति को सहस्त्रों वर्षों से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करता रहा है जिसके द्वारा आज तक हम अपनी संस्कृति और सभ्यता को आज भी संजोए हुए हैं। जिसके कारणवश ही हमारे नैतिक और आध्यात्मिक गुणों का विकास होता है। अत: शिक्षा मानव के ज्ञान चक्षु को खोलने और ज्ञान रुपी विज्ञान की प्रगति में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस प्रकार हम यह अनुभव करते हैं कि भौतिक, आध्यात्मिक व बौद्धिक जगत में मानव की जो भी उपलब्धियाँ हैं चाहें वे गगनचुम्बी इमारतों के रुप में हों अथवा परमाणु शक्ति के रुप में, प्रकृति के रहस्यों की खोजों के रुप में हो अथवा कला और संस्कृति के क्षेत्र में हो रहे इन समस्त कृत्यों के पीछे मानव की शैक्षिक क्षमता ही है। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी स्वयं की भौगोलिक स्थिति तथा इतिहास की परंपराओ के कारण एक संस्कृति का विकास जाता है तथा वह राष्ट्र अपनी संस्कृति के अनुसार ही अपनी व्यवस्थायें बनाकर ही उन्नति कर सकता है। इतिहास ने भारतीयों के साथ घोर मजाक किया, मुस्लिम आक्रान्ताओं ने स्वतन्त्र चिन्तन और अध्ययन में संग्रहीत भारतीय दर्शन के मूल तत्व को अप्रमाणित कर कलंकित करने का कार्य किया। पूर्व में भारत को एक परतंत्र राष्ट्र के रूप में एक दास की तरह शासक राष्ट्र की भाषा एवं संस्कृति को स्वीकार करने को विवश होना पड़ा। बल द्वारा लदी हुई संस्कृति अत्यन्त खतरनाक और भयावह होती है और इसी भयावह स्थिति के परिणामस्वरुप ही भारत में अंग्रजों द्वारा सर्वप्रथम अपनी शिक्षा नीति के द्वारा ऐसा जहर पिलाया गया कि हम स्वत: ही अपनी संस्कृति से घृणा करने लगे और पाश्चात्य सभ्यता को अपने जीवन में आत्मसात करने लगे जोकि हम सभी को अत्यन्त ही घातक सिद्ध हुई।

मैकाले ने अपनी पुस्तक मिनट ऑफ 1835 में लिखा-"मुझे एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिल सका जो इस तथ्य को नकारे कि अच्छी यूरोपीय किताबों की एक अलमारी की कीमत भारत और अरब में लिखे गए साहित्य से अधिक है।" आजादी के पश्चात हमें अपनी स्वतन्त्र शिक्षा की नीति को कार्यान्वित करने का कार्य करना था। इस परिप्रेक्ष्य में दीनदयाल जी ने चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा कि " देश स्वतन्त्र होने के पश्चात स्वाभाविक रुप से हम सभी के समक्ष यह प्रश्न आ जाना चाहिए कि अब हमारे देश की दशा क्या होगी ? किन्तु सबसे बड़ा आश्चर्य इस बात का है कि देश की स्वतंत्रता के बाद भी जिस गंभीर रुप से इस मुद्दे पर चर्चा व विचार होना चाहिए था उतने गंभीर रुप से इस मुद्दे पर लोगों ने विचार नहीं किया।" पण्डित जी की चिन्ता और अधिक बढ़ जाती है जब वह देखते हैं कि राष्ट्र के सत्तीहीन नेता उपरोक्त प्रश्न का हल ढूढ़ने का गहराई से कोई प्रयास नहीं कर रहे हैं। राष्ट्र का मार्गदर्शन करने वाले तथा राजनीतिक क्षेत्र में काम करने वाले अधिकांश व्यक्ति इस प्रश्न की ओर उदासीन हैं। फलता भारत की राजनीति अवसरवादी और सिद्धांतों से विहीन होकर एक अखाड़ा बन गई है। इन दलों के न तो कोई आदर्श हैं और न ही कोई सिद्धांत।

वे आगे कहते हैं कि इस देश के भाग्य विधाता वे लोग बनें जिनकी शिक्षा-दीक्षा कैम्ब्रिज और ऑक्सफोर्ड में हुई थी तथा जो अपनी मातृभाषा में बोलने और लिखने के बजाय अंग्रेजी में सोचने, लिखने एवं बोलने में गर्व का अनुभव करते थे, वे यहाँ की संस्कृति को किस प्रकार प्रतिष्ठा दे सकते थे, उन्होंने भारत को इंग्लैण्ड और अमेरिका जैसी पाश्चात्य सभ्यता से ओतप्रोत देशों की नकल करने की कोशिश की।

शोध पत्र में प्रयुक्त शब्दों की व्याख्या :-

शोध शीर्षक में प्रयुक्त शब्दों का परिभाषीकरण निम्न है-

लोकतान्त्रिक भारत की शिक्षा- इससे तात्पर्य भारतीय परिवेश में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात की भारतीय शैक्षिक, राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन।

शैक्षिक विचार- दीनदयाल जी ने भारतीय परिवेश को ध्यान में रखते हुए अपने चिंतन और दर्शन के आधार पर किस प्रकार की शैक्षिक परिकल्पना की। दीनदयाल जी ने शिक्षा के विभिन्न आयामों को किस प्रकार परिभाषित किया है। वे शिक्षा के माध्यम से समाज का कल्याण और विकास करना चाहते हैं।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 02, Issue 10, October 2023

अध्ययन के उद्देश्य:-

उद्देश्यों के बिना किसी भी कार्य की कल्पना करना भी मुश्किल होता है। किसी भी कार्य को करने से पहले उसके उद्देश्यों के बारे में कल्पना करना अत्यन्त जरुरी होता है। बिना उद्देश्यों के कार्य करना दिशाहीन जहाज की तरह भटकना होता है। उद्देश्य ही मनुष्य को कार्य करने की प्रेरणा शक्ति प्रदान करते हैं और एक निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक होते हैं। जान डीवी का कथन बिल्कुल सही है कि "उद्देश्य सहित कार्य करना ही कुशलता या बुद्धिमानी से कार्य करना है।" उद्देश्य निश्चित कर लेने पर ही आधी सफलता प्राप्त हो जाती है।

'जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ।
मैं बपुरा बूडन डरा, रहा किनारे बैठ ॥' **(बीजक, कबीरदास)**

उपरोक्त दोहे का अर्थ है कि, जो प्रयत्न करते हैं, वे कुछ न कुछ वैसे ही पा ही लेते हैं जैसे कोई गोताखोर गहरे पानी में जाता है और कुछ लेकर ही आता है, लेकिन कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो डूबने के भय से किनारे पर ही बैठ जाते हैं और कुछ कर नहीं पाते। अर्थात् उद्देशयों को प्राप्त करने के लिए दृढ़ इच्छा शक्ति की आवश्यकता होती है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की शाखाओं में वालकों में लक्ष्य प्राप्ति का गुण विकसित करने के लिए उनके हृदय में दृढ़ इच्छा शक्ति जागृत करने की प्रेरणा दी जाती है।

यदि हम उद्देश्यों के सामने रखकर कोई कार्य करते हैं तो उसे पूरा करने के लिए पूरी शक्ति लगा देते हैं जिससे समय भी कम लगता है और कार्य श्रेष्ठतापूर्वक होता है। चूंकि मात्र उद्देश्यों को तय कर लेना ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि उद्देश्यों की गुणवत्ता भी आवश्यक होती है।

1. भारत को एक ऐसे वैचारिक दर्शन की आवश्यकता है जो भारतीय परिवेश के अनुकूल हो और समाज में परिवर्तन तथा समाज में सम्पन्नता प्रदान करने में समर्थ हो चूंकि पं0 दीनदयाल जी द्वारा प्रदान किया गया 'चिंतन दर्शन' इस कार्य पर खरा उतरता है इसी कारणवश दीनदयाल जी के शैक्षिक विचारों को जन-जन तक पहुँचाने की आवश्यकता है।
2. शोध का उद्देश्य है कि दीनदयाल जी के शैक्षिक विचारों से प्रेरित होकर हमारा समाज उन्नति करे और सम्पन्नता से परिपूर्ण हो अर्थात् समाज के लोग इस युग को श्रम युग समझकर युग के निर्माण में जुट जायें, जिनके सामने रोटी का सवाल है, जिनके न रहने को मकान है, न तन ढकने को वस्त्र हैं की संपन्नता से समाज को परिपूर्ण करना।
3. दीनदयाल जी के वैचारिक पक्ष का अध्ययन करना, क्योंकि उनके वैचारिक पक्ष के दर्शन मात्र से उनका विश्व तथा मानव का एक साथ सामंजस्य समझ में आ सकता है। क्योंकि जो चिंतन दर्शन पं0 जी ने दिया है वह समस्त समस्याओं का सटीक समाधान स्वयं में संजोए हुए है अत: उद्देश्य यह है कि भारत से प्रेम रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति उनसे प्रेरणा ले सके।

जो व्यवस्था, राजनीति, प्रवृत्ति, सामाजिक नियम और शिक्षा पद्धति हमारे समाज को कर्म विहीन, आलसी, निष्ठुर और बेईमान बनाये उसे हम समझकर बदलने की ओर प्रतिबद्ध हो जायें और निरंतर अपने लक्ष्य की ओर चलने योग्य बन सकें और दीनदयाल जी के राष्ट्र चेतना निर्माण के श्रेष्ठ विचारों को जन-जन तक पहुचाकर राष्ट्र के कल्याण में सहभागी हो सकें।

उपाध्याय जी का शिक्षा के क्षेत्र में योगदान:- भारतीय शिक्षा के संबंध मे पं. दीनदयाल जी के विचार उनकी पुस्तक राष्ट्रचिंतन एवं पांचजन्य में उनके लेखों के अध्ययन से यह परिलक्षित होता है कि दीनदयाल जी एक ऐसी शिक्षा के समर्थक थे जो समयानुकूल होने के साथ-साथ देशानुकूल भी हो। उनके अनुसार व्यष्टि और समष्टि को जोड़ने वाला प्रथम सूत्र है शिक्षा। वे शिक्षा को समाज की जननी मानते हैं। यदि शिक्षा न हो तो मानव समाज को जन्म ही न हो। समाज में शिक्षा के स्थान की

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 02, Issue 10, October 2023

प्रासंगिकता व गरिमा का बोध कराते हुए दीनदयाल जी कहते हैं- हमारे शस्त्रकारों के अनुसार यह ऋषि ऋण है जिसे चुकाना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। जब हम भावी सन्तति की शिक्षा की व्यवस्था करते हैं तो हमारी उनके प्रति उपकार भावना नहीं रहती अपितु हमें जो कुछ धरोहर अपने पूर्वजों से प्राप्त हुई है उसे आगे की पीढ़ी को सौंपकर उनके ऋण से उऋण होने की मनीषा रहती है। दीनदयाल जी मानते हैं कि शिक्षा हर व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है समाज द्वारा इसकी व्यवस्था होनी चाहिए। शिक्षा का विक्रय समाज के लिए घातक सिद्ध होगा। अतः शिक्षा सुनिश्चित और निःशुल्क होनी चाहिए। इस सन्दर्भ में वे लिखते हैं कि बच्चों को शिक्षा देना समाज के अपने हित में है। जन्म से मानव पशुवत पैदा होता है, शिक्षा व संस्कार से वह समाज का अभिन्न घटक बन जाता है। जो काम समाज के हित में हो उसके लिए यदि शुल्क लिया जाए यह तो उल्टी बात है। जिस प्रकार पेड़ लगाने और सींचने से पेड़ के फलने पर हमें फल मिलेंगें ही ठीक इसी प्रकार शिक्षा भी विनियोजित है।

भारत में 1947 से पहले राज्यों में कहीं भी शिक्षा के लिए शुल्क नहीं लिया जाता था। उच्चतम श्रेणी तक शिक्षा निःशुल्क थी। गुरूकुलों में तो भोजन व रहने की व्यवस्था भी आश्रम में ही होती थी, केवल भिक्षाटन के लिए ब्रह्मचारी समाज में जाता था। कोई भी गृहस्थ ब्रह्मचारी को खाली हाथ नहीं लौटाता था अर्थात समाज द्वारा शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी। वर्तमान की बदली हुई परिस्थितियों में जब हमने लोक कल्याणकारी समाज की स्थापना की है। इस सामाजिक दायित्व को वहन करने को दायित्व राज्य अथवा समाज का है। अपनी पुस्तक सिद्धांत और नीति में दीनदयाल जी लिखते हैं कि प्रजा को शिक्षा की उपेक्षा न करने देना, शिक्षा सम्बन्धी कार्यों में उसकी सहायता करना, प्रत्येक स्थान पर विद्वान गुरूओं का प्राचुर्य रखना, देश काल निमित्तों को शिक्षा के अनुकूल रखना, सर्वथः उनके उत्साह को बनाए रखना राज्य व समाज का कर्तव्य है। राज्य को शिक्षा के प्रति उत्तरदायी मानते हुए भी दीनदयाल जी शिक्षा के सरकारीकरण के विरुद्ध हैं। वे अपनी पुस्तक में कहते हैं- बेशक एक कल्याणकारी राज्य में शिक्षा की मूल जिम्मेदारी सरकार की होती है लेकिन हमें शिक्षा के सरकारीकरण से बचना चाहिए। वे शैक्षिक स्वायत्ता का समर्थन करते हैं। प्रत्येक क्षेत्र में शिक्षा संस्थानों को प्रबंध करने के लिए शिक्षकों तथा शिक्षाविदों के स्वायत्त निकाय होने चाहिए, सरकार के निकाय के रूप में उनका चलना ठीक नहीं। सरकारी और गैर सरकारी शिक्षा संस्थाओं का भेद समाप्त कर देना चाहिए। शिक्षा संस्थाओं को मैनेजरों व प्रबन्ध समिति की निजी सम्पत्ति बनने देना उचित नहीं।

स्वतन्त्रता का दुरूपयोग कर निजी सम्पत्ति बनाने की प्रवृत्ति की ओर भी सवधान रहना अत्यन्त आवश्यक है। अतः स्वातयत्ता का अर्थ यह बिल्कुल नहीं है कि शिक्षा की दुकानदारी हो बल्कि शिक्षा को संविधानतः सुपरिभाषित स्वायत्त राष्ट्रीय निकाय के अन्तर्गत प्रदान किया जाए। दीनदयाल जी इसी प्रकार की शिक्षा से अभिप्रेरित थे। वे शिक्षा के दोहरे ढ़ाँचे, पब्लिक स्कूल व सरकारी एवं निजी स्कूलों की व्यवस्था के विरूद्ध हैं। वे पब्लिक स्कूलों को राष्ट्रीयतानाशक प्रभाव छोड़ने वाले विद्यालय के रूप में वर्णित करते हुए कहते हैं कि , शिक्षा समाज में भेद करने वाली न होकर एकात्मभाव व एकात्ममानववाद के सिद्धांत से प्रेरित होनी चाहिए। उनके विचार में समाज व राज्य संस्था के द्वारा जहाँ शिक्षा का योग्य नियमन होना चाहिए, वहीं शिक्षातत्व पर बाहरी साम्राज्यवादी ताकतें हमारे समाज को अस्वस्थ न करें, इसका ध्यान रखना भी जरूरी है। इस दृष्टि से वे भारत में ऐसी संस्थाओं को खतरनाक मानते हैं। भारत में बहुत सी शिक्षा संस्थाएं ईसाई मिशनों के द्वारा चलाई जा रही है। बहुधा ईसाई धर्म प्रचारकों द्वारा चलाई गयी शिक्षा संस्थाओं एवं शिक्षा क्षेत्र में उनके प्रयत्नों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की जाती है। इतना ही नहीं आज के अनेक पढे-लिखे व्यक्ति तथा देशभक्त कहे जाने वाले भारतीय संस्कृति के प्रेमी भी अपने बच्चों को शिक्षा के लिए इन ईसाई स्कूलों में भेजते हैं। किसी भी बाहरी शक्ति का हस्तक्षेप एवं प्रभाव नहीं सहन कर सकते। आर्थिक क्षेत्र में भी बाहरी सहायता व पूंजी भय का कारण बन जाती है। शिक्षा के क्षेत्र में विदेशियों को अधिकार देना कहाँ तक उचित है? अपरिपक्व मस्तिष्क पर विदेशी शक्तियों को प्रभाव डालने की अनुमति देना जैसे जड़ को काटने की स्वतन्त्रता देना ही है। दीनदयाल जी मानते हैं कि शिक्षा केवल शालेय उपक्रम मात्र नहीं है वरन एक सम्पूर्ण सामाजिक प्रक्रिया है। शालेय शिक्षा उसका महत्वपूर्ण भाग होते हुए भी केवल शालेय शिक्षा से समाज सर्वांग रूप से सुरक्षित

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 02, Issue 10, October 2023

नहीं हो सकता। अतः वे एक शिक्षकत्रयी का वर्णन करते है। उनकी मान्यता है कि शिक्षा के व्यापक अर्थों में समाज का प्रत्येक घटक ही शिक्षक है। अतः प्रथम शिक्षक है- समाज, द्वितीय शालेय अध्यापक एवं तृतीय है- व्यक्ति स्वयं। इस शिक्षकत्रयी को भारतीय शास्त्रकारों नें निम्न वाक्यों में प्रतिबिंबित किया है-

1. माता प्रथमा गुरु:
2. आचार्य देवो भव:
3. आत्मदीपो भव:

माता प्रथमा गुरु:-

महर्षि वेदव्यास जी के अनुसार- "पितुरप्यधिका माता गर्भधारणपोषणात् ।
अतो हि त्रिषु लोकेषु नास्ति मातृसमो गुरुः"॥

गर्भ को धारण करने और पालनपोषण करने के कारण माता का स्थान पिता से भी बढकर है। इसलिए तीनों लोकों में माता के समान कोई गुरु नहीं अर्थात् माता परमगुरु है।

"नास्ति गङ्गासमं तीर्थं
नास्ति विष्णुसमः प्रभुः।
नास्ति शम्भुसमः पूज्यो
नास्ति मातृसमो गुरुः"॥

गंगाजी के समान कोई तीर्थ नहीं, विष्णु के समान प्रभु नहीं और शिव के समान कोई पूज्य नहीं और माता के समानकोई गुरु नहीं।

'मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथि देवों भव।' अर्थात् माता को, पिता को, आचार्य को और अतिथि को देवता के समान मानकर उनके साथ व्यवहार करो। **(तैत्तिरीयोपनिषद)**

आचार्य देवो भव:- शिक्षालयों की व्यवस्था कर औपचारिक अध्यापन के माध्यम से शिक्षा देना एक सर्वमान्य शैक्षिक तरीका है। अक्षर ज्ञान व कुछ पाठ्यक्रम के माध्यम से हम व्यक्ति को शिक्षित करते हैं। यह औपचारिक शिक्षा निर्जीव कर्मकाण्ड न बन जाय, अत: आवश्यक है कि शिक्षा के व्यापक अर्थों को समझने वाले व्यक्ति अध्यापक बनें तथा समाज शिक्षक को सर्वाधिक सम्मानित पद के रूप में स्वीकार करे। शिक्षक की वर्तमान स्थिति व अपने सुझावों को प्रतिपादित करने वाला एक वर्णनात्मक लेख दीनदयाल जी ने 'आर्गेनाइजर' में 17 सितम्बर 1962 को लिखा। उसमें उपाध्याय जी ने अपने स्नेही शालेय अध्यापक से अध्यापक बनने की अपनी इच्छा जताई तो उनके उन शुभेच्छु अध्यापक ने जो कुछ कहा उसका वर्णन करते हुए उपाध्याय जी लिखते हैं कि "वह चुप हो गये, उनके चेहरे पर ठंडी उदासी छा गयी, फिर उन्होंने पर्याप्त कड़वाहट के साथ कहा- कृपा कर तुम कुछ भी कर लो। चाहे तुम मोची बन जाओ, चाहे सड़क के किनारे बैठ कर और कर जूते गाँठने का काम करो लेकिन इस गंदले मास्टरजी के काम को मत अपनाओ। अध्यापक बनने से तुम्हारी इस लोक व परलोक, दोनों लोकों के जीवन की समस्त सम्भावनाएं निश्चित रूप से समाप्त हो जायेंगी।" अपने शुभेच्छु पूर्वाध्यापक की बात न मानते हुए उपाध्याय ने टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज में प्रवेश लिया तथा वहाँ के अनुभव को अपने लेख में इस प्रकार वर्णित करते हैं – "यथासमय मैंने प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्रवेश लिया। मैने वहाँ देखा कि शिक्षक का यह उदात्त कार्य आज आदर्शवादी व सेवाभावी लोगों को आकर्षित नहीं कर पा रहा है। केवल वह लोग जो अन्यत्र स्थान पाने में असमर्थ रह जाते हैं अध्यापक बन जाते हैं। आई.सी.एस. से लेकर नायब तहसीलदार तक की विभिन्न परीक्षाओं में ये प्रशिक्षणार्थी बैठते थे, लेकिन इनमें जो अनुत्तीर्ण हो जाते, वे ही अध्यापक बनने की सोचते थे। जॉनसन ने कहा है- शेष सब धन्धों से बचे हुए अधम जनों का धन्धा राजनीति है। वस्तुत: भारत में अध्यापन कुण्ठाग्रस्त लोगों के लिए बचा हुआ धन्धा है। इस प्रकार से यह आत्महत्या का पूर्व सोपान है।" जिस शिक्षक के हमारी प्राचीन समाज व्यवस्था ने 'आचार्य देवो भव' कहा, उसके आभामण्डल का यह अपखण्डन

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 02, Issue 10, October 2023

बहुत ही चिन्ताजनक है। यदि हमें अपने समाज को सही अर्थों में सुशिक्षित करना है तो अध्यापक की गरिमा को पुनः स्थापित करना होगा।

आत्मदीपो भव:- समाज की शिक्षक अवस्था तथा औपचारिक अध्यापन व्यवस्था के बाद व्यक्ति स्वयं ही अपना शिक्षक होता है। स्वाध्याय मनुष्य का स्वयं अध्यापन है। पठन, मनन और चिन्तन के सहारे मनुष्य ज्ञान को आत्मसात करता है। बिना स्वाध्याय के न तो प्राप्त ज्ञान टिकता है न ही बढ़ता है। स्वाध्याय के बिना ज्ञान को जीवन का अंग बनाकर तेजस्वी बनाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अत: 'स्वाध्यायन्मा प्रमद:' (स्वाध्याय में आलस्य मत करो), यह कुलपति का स्नातक को दीक्षान्त के अवसर पर आदेश रहता है। पुस्तकालय आदि की व्यवस्था स्वाध्याय के लिए आवश्यक है। उपाध्याय जी समाज में शिक्षामय वातावरण के लिए घर व नगर में पुस्तकालयों की स्थापना तथा पठन-पाठन का वातावरण बनाने पर विशेष बल देते हैं। इसके बिना शालेय शिक्षा का भी वांछित टिकाव एवं विकास संभव नहीं है। शालेय शिक्षा अकेली ही मनुष्य का निर्माण नहीं करती। संस्कार और अध्यापन का बहुत सा ऐसा क्षेत्र है जो शालेय क्षेत्र के बाहर है। यदि इन दोनो क्षेत्रों में विरोध रहा तो विद्यार्थी के जीवन में एक अंतर्द्वन्द्व उपस्थित हो जाता है। एक समन्वित, एकीकृत, सर्वांगपूर्ण अखण्ड व्यक्तित्व का विकास होने के स्थान पर उसकी प्रकृति में विभक्त निष्ठाओं का समावेश हो जाता है। समाज और उसके बीच एक खाई पड़ जाती है। आज केवल औपचारिक शिक्षा पर ज्यादा जोर दिया जा रहा है, तथा वांछित परिणामों को न प्राप्त कर सकने की कुंठा के कारण शिक्षा पद्धति की निन्दा तथा परस्पर आरोप-प्रत्यारोप का वातावरण बन रहा है। उपाध्याय जी इसे समाज की अस्वस्थ अवस्था का परिचायक मानते हैं। औपचारिक शिक्षा तो संस्कार एवं स्वाध्याय के बीच की कड़ी है। शिक्षा की सर्वांगपूर्णता की प्रथम शर्त है- 'संस्कारक्षम समाज' अर्थात प्रत्येक व्यक्ति में शिक्षा के प्रति उत्तरदायित्व की भावना आवश्यक है। परिवार, हाट-बाजार, खेत-खलिहान ये सब शिक्षालय के ही रूप है। समाज में यह चेतना उत्पन्न करना सामाजिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक आन्दोलनों संगठनों व नेताओं का कार्य है। इस कार्य को किए बिना केवल सरकारी माध्यम से शिक्षा की सर्वांगपूर्ण व्यवस्था की कल्पना करना सर्वथा अव्यवहार्य है। समन्वित शिक्षकत्रयी ही समाज में सर्वांगपूर्ण शिक्षा नीति की प्रत्याभूति है। इसी क्रम में उपाध्याय जी शिक्षा के लिए स्वभाषा की अपरिहार्यता को भी आवश्यक बताते हैं।

इस प्रकार उपाध्याय जी अपने देश-काल के अनुरूप भारतीय शिक्षा के वैदिक आदर्श को स्थापित करने के पक्षधर दिखाई देते हैं। सब दिशाओं से मिले शुभ ज्ञान, यह हमारे दर्शन का दिशाबोधक सिद्धान्त है। लेकिन हमें यह भी तय करना होगा कि हमारे देश व समाज के हित में हम क्या ग्रहण करें। यह हमारा अधिकार ही नहीं अपितु वांछनीय भी है।

निष्कर्ष :- उपाध्याय जी का शैक्षिक दर्शन 21वीं सदी के मूल्यों जैसे संस्कृति, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, आत्म निर्भरता, आत्म नियंत्रण, सतत विकास, सामाजिक न्याय इत्यादि को प्राप्त करने के लिए आज भी प्रासंगिक है । वह भारत की संस्कृति के तथा लोक कल्याण के बहुत बड़े विचारक तथा प्रशंसक थे । दीनदयाल जी का मानना था कि यदि किसी को भारत की आत्मा को समझना है तो उसे इस देश की संस्कृति और सभ्यता को समझना होगा । भारत की शिक्षा और संस्कृति इतनी विस्तृत है कि उसे कुछ एक पन्नों पर नहीं दर्शाया जा सकता । "भारतीयता राजनीति के माध्यम से नहीं बल्कि संस्कृति के माध्यम से प्रकट होती है। अगर हमारे पास कुछ भी है जो हम दुनिया को सिखा सकते हैं तो वह सांस्कृतिक सहिष्णुता की भावना और कर्तव्य के प्रति समर्पित जीवन है"।(राजे, सुधाकर. 2008) भारतीय संस्कृति का दृष्टिकोंण सदैव सा विद्या या विमुक्तये अर्थात् शिक्षा को मनुष्य को मुक्त करने के तरीके के रूप में दर्शाता है । उपाध्याय जी इस सूक्ति के समर्थक थे क्योंकि वे शिक्षा के माध्यम से मनुष्य के समग्र विकास में विश्वास करते थे ।

संदर्भ सूची :-

उपाध्याय, दीनदयाल(2004). राष्ट्र जीवन की दिशा, राष्ट्र धर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ

कपिल, एच. के.(1994). अनुसंधान विधियाँ, सर्वेक्षण अनुसंधान, एच.पी. भार्गव पब्लिकेशन: आगरा

कुलकर्णी, अनन्त(1988). पं. दीनदयाल उपाध्याय का विचार दर्शन, सुरुचि प्रकाशन: नई दिल्ली

गोयनका, कमल किशोर(1972).पंडित दीनदयाल उपाध्याय: व्यक्ति दर्शन, दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली

तिवारी, बाबूलाल(1997).वर्तमान भारतीय परिवेश में पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के शैक्षिक विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन,पी.एच.डी. थीसिस,वी.के.वी. कालेज झाँसी

दुबे, सी.एम.(2020). पं. दीनदयाल उपाध्याय: दी प्राइड आफ नेशन, पाण्डुलिपि प्रकाशन, नई दिल्ली

भारद्वाज, राजकुमार(2019). दीनदयाल उपाध्याय: रचना संचयन, मेधा पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

मिश्र, अनिल दत्त(2020).दीनदयाल जी की विचार-दृष्टि और दर्शन https://rashtriyashiksha.com/deendayal-upadhyays-vision-and-philosophy

शर्मा, विजय दत्त(2017). पंडित दीनदयाल उपाध्याय: एक विलक्षण व्यक्तित्व, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला

सिंह, रसाल(2020). पंडित दीनदयाल और एकात्म मानववाद पश्चिम की बजाय भारत को भारत की दृष्टि से देखना आवश्यक, Retrieved from-https://hindi.opindia.com/opinion/political-issues/pandit-deendayal-upadhyaya-indian-culture-nationalism

सिंह, सुरेन्द्र(2022). पंडित दीनदयाल उपाध्याय: एक समग्र अध्ययन, Purva Mimaansa, S.D. college Ambala cantt. ISSN:0976-0237/Vol-13, Issue March 2022/Impact factor 4.762

त्रिपाठी,एस.के. और सिंह, आर.पी.(2016). एकात्म मानववाद और पं0 दीनदयाल उपाध्याय, Kaav international Journal of arts, humanities & social sciences KIJAHS/APR-JUN2016/Vol-3/Iss-2/A40

https://rashtriyashiksha.com/indian-education-in-the-eyes-of-deendayal-upadhyay/

https://kmsraj51.com/pratham-guru-mata-hindi.html/

https://rashtriyashiksha.com/deendayal-upadhyays-vision-and-philosophy-1/